उन्नति की खुराक
अचौर्यव्रत

प्रवचनकार
आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज

: **प्रकाशक** :
वीर विद्या संघ, गुजरात

उन्नति की खुराक अचौर्यव्रत (एक प्रवचन)

प्रवचनकार : आचार्य श्री विद्यासागर जी मुनिराज

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन वीर विद्या संघ ट्रस्ट, गुजरात

प्रेरक निर्देशक : आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य बाल ब्र. राजेशजी (दशम प्रतिमाधारी)

संस्करण : प्रथम २००० प्रति (१९९५)

प्राप्ति स्थान : श्री दिगम्बर जैन वीर विद्या संघ ट्रस्ट,
बी/२ संभवनाथ एपार्टमेन्ट, बखारिया कॉलोनी,
उस्मानपुरा, अहमदाबाद – १३. गुजरात.
फोन : ०७९– ४०६८२३.

मुद्रक : साधना ऑफसेट वर्क्स, नरोडा, अहमदाबाद
फोन : ८१४५९१

प्रकाशकीय

"अचौर्य व्रत"

जमाने भर के पदार्थो पर अधिकार पाने की जिज्ञासा रखने का वैचारिक भाव जो असंभव है उसे संभव करने का जो ब्रह्म को भी संभव नहीं है यह विषयी कषायी उसे संभव करने का प्रयास कर रहें है ।

एक दार्शनिक ने जगत की परिभाषा करते हुये लिखा है कि दूसरा जो भी है वही दुःख और नरक है । पतित को पावन करने के लिए, अधोमुखी जीवन जीने की अपेक्षा, उन्नति के शिखर पर पहुंचने के लिए **आचार्य विद्यासागरजी महाराज** की जादुई वाणी सोपान का काम करेगी ।

चोरी करना बहुत बड़ा पाप है, चोरी करने वाला सज्जन नागरिक नहीं कहला सकता । यह कानून लौकिक शास्त्र में भी है । चोरी को तो आप छोड़ सकते है किन्तु चोरी क्या है पहले यह समझना परमावश्यक है । प्रत्येक व्यक्ति कहता है कि मैं साहूकार हूँ । क्या चोरी के त्याग का संकल्प लिया है या नहीं, आवश्यकता भी क्या है ? तब आप साहूकार कैसे ? आदि अनेक बातें आचार्य श्री ने अपने उद्‌बोधन में समझायी है जिसे सुनकर मानकर प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको अपराधी मानने सहज तैयार हो जाता है । और संकल्प की महत्ता को समझने लगता है । हमारे अंदर वह आत्मारत्न है, हीरा रत्न हैं वह स्फटिक है जिसे पाने के बाद दुनिया की तमाम लालसायें समाप्त हो जायें ।

इस पुस्तक के पाठकों से निवेदन है कि वे चक्कर से बचने के लिये इसका पूरा–पूरा उपयोग करें ताकि जो चक्कर आज तक आपको शक्कर से लगे उन्हें छोडने का भरसक प्रयत्न करें ! **वीर विद्या संघ, गुजरात** द्वारा प्रस्तुत कृति आपके प्रयत्न में सहयोगी हो यही भावना है ।

वीर विद्या संघ
गुजरात

"समर्पण"

जिन्होने असंयम रुपी कर्दम में फंसी हुई आत्मा को अपनी उदार एवं
वात्सल्यवृत्ति रुपी डोर से बाहर निकालकर विशुद्ध किया
तथा संयम का बीजारोपण कर
मोक्षमार्ग पर चलने की अपूर्व शक्ति प्रदान की,
उन्ही परमोपकारी, गुरुदेव, परम श्रद्धेय, प्रातः स्मरणीय, शतेन्द्रवन्द्य,
संत शिरोमणी समाधि सम्राट दिगम्बर जैनाचार्यश्री
१०८ विद्यासागरजी महाराज के शुभार्शीवाद से

**श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र हांसी (हिसार) हरियाणा के
नूतन चैत्यालय की वेदी प्रतिष्ठा एवं नूतन पाषाणनिर्मित
विशालकाय जिनालय के शिलान्यास के शुभ अवसर पर**

आपकी ही सुयोग्य परम शिष्या गेहुंआ रंग, तेजयुक्त चेहरा, चोड़ा ललाट,
भीतर तक झांकती सी बड़ी आँखे, हिंत मित प्रिय स्पष्ट बोल,
संयमित सधी चाल, सौम्यमुद्रा बस यही है जिनका अंगन्यास.....
नंगे पांव, लुञ्चितसिर, धवलशाटिका, मयूरपिच्छिका बस यही है उनका वेश विन्यास
विषयाशाविरक्त, ज्ञानध्यान तप जप में निरत करुणासागर, प्रवचनपटु
समता–विनय–धैर्य और सहिष्णुता की साकारमुर्ति, भद्रपरिणामी साहित्यसृजनरत,
साधना में व्रज से भी कठोर, वात्सल्य में नवनीत से भी मृदु,
आगमनिष्ठ गुरुभक्ति–परायण, बस यही है जिनका अन्तर आभास
पूज्यनीय आर्यिका रत्न १०५ श्री दृढमति माताजी के
कर कमलों मे अनन्य श्रद्धा एवं गुरुभक्ति पूर्वक सविनय–
सादर समर्पित

ब्र. राजेश

"आमुख"

सूरज कि किरणें सप्त रंगों से परिपूर्ण होती है। जरुरी नहीं है कि जो रंग उसका मुझे दिखा केवल वही आपको दिखे। यह प्रत्येक का निजी मामला है कि वह आचार्य श्री विद्यासागर के वचनों से कितना बोध लेता है। मुझे गुरुदेव के शब्दों का प्रस्तोता बनने का सौभाग्य मिला यह उनकी अनुकम्पा है। मेरे आराध्य की दिव्य देशना सभी के जीवन को आनंद विभोर कर देती है। उनके द्वारा उच्चारित शब्द, जीवंत और ज्वलंत है। शब्द की शक्ति उससे अर्थ की सामर्थ्य, कथ्य की सुगंधमयी अनुभूति इस व्याख्यान में सर्वत्र व्याप्त है।

अमृत कुण्ड में स्नान करके उसका वर्णन करना, शरदकालीन वर्षा में छहाई चांदनी को निहारने का आल्हाद पूर्ण क्षणों के अनुभव को बताना और आचार्य श्री के पीयूष–प्रवचन के विषय में कुछ कहना एक जैसा है।

इस पुस्तक में ऐसे मील के पत्थर खड़े है जो हमें हर संघर्ष के बीच से आगे बढ़ते रहने का प्रोत्साहन देते हैं। जो आचार्य श्री के सम्पर्क में है, वे तो न प्रत्यक्ष में, अपितु स्मृतियों में भी उनका दर्शन और सत्संग करते है यह पुस्तक सारे जहान के लिए है। आत्मरुपान्तर के लिए है। गुरुजी स्वयं में ही एक जीवन क्रान्ति है।

मेरी नन्हीं सी कलम कैसे समेटे इस विराट व्यक्तित्व को इन छोटे छोटे शब्दों में जिन्होने हमे प्रदान किया है अस्तित्व बोध। उनके जीवन के आईने को आर–पार देखते हुए अपनी झलक दिखने लगती है हम सभी अपने गुरुदेव की अनोखी कृतियाँ है। हम जो कुछ भी है उन्ही की बदौलत है।

मैने प्रवचनों के संकलन का जो गुरुत्तर भार सम्भाला और प्रत्यन्त किया है कि शब्दों का तारतम्य छूटने ना पाये और पढने वालो को ऐसा लगे कि साक्षात आचार्यश्री ही प्रवचन दे रहे है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन का महत्वपूर्ण योगदान **वीर विद्या संघ, गुजरात** का है साथ ही प्रस्तुत कृतियों के सम्पादनादि कार्यो में पूज्य आर्यिका रत्न **१०५ श्री दृढमति माताजी** के संघ का भी अति महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। मैं उनको भी बधाई देता हूँ जिन्होंने अपनी चंचला लक्ष्मी का सद्उपयोग किया है। इन कृतियों के सुंदर और समय पर प्रकाशन करने में मुद्रक **साधना आफसेट वर्क्स, अहमदाबाद** भी बधाई के पात्र है अपना समस्त कार्य छोड़कर उन्होने इस को प्राथमिकता दी यह उनके धर्म पारायण होने का बहुत बडा प्रमाण है। अंत में मैं उन जाने अनजाने सहयोगीयों का भी आभार मानता हूँ जिनका प्रस्तुत कृतियों के प्रकाशन में सहयोग प्राप्त हुआ है यदि स्वर व्यंजन पद आदि में कोई त्रुटि रह गई हो तो मैं क्षमाप्रार्थी हुँ।

ब्र. राजेश

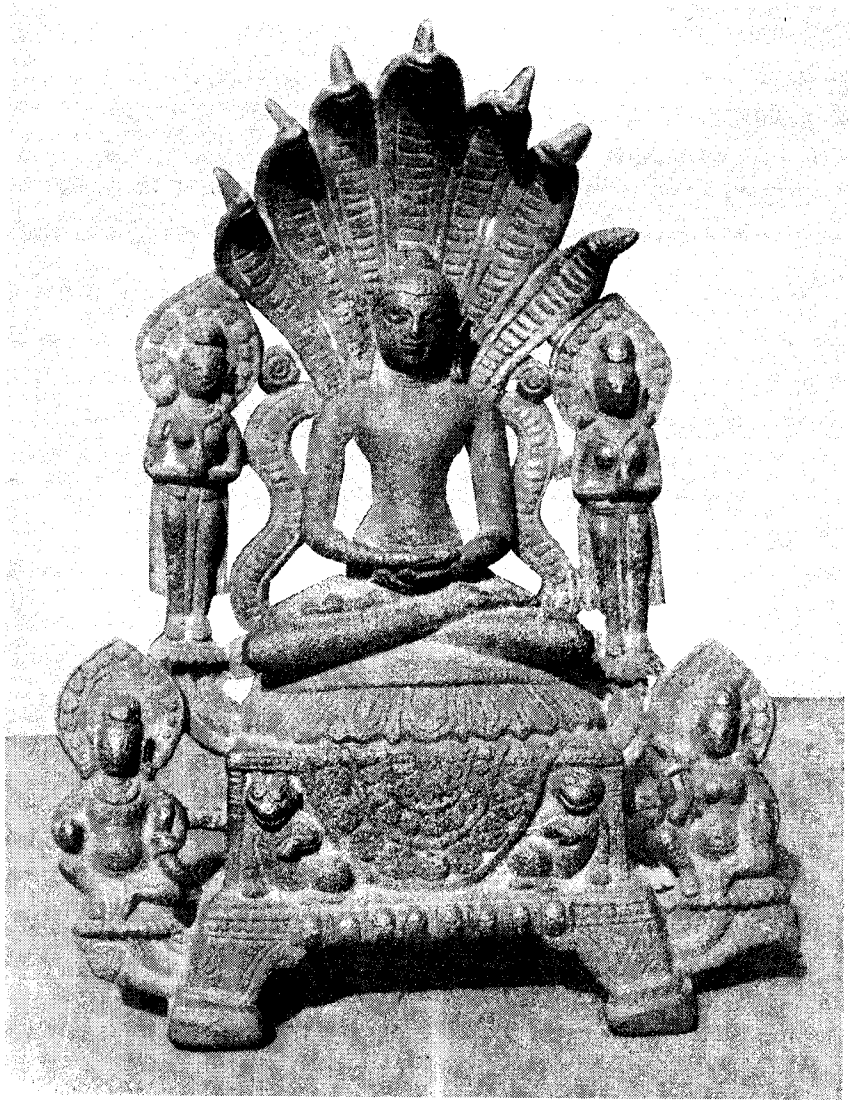

भूगर्भ से प्राप्त १००८ भगवान श्री पार्श्वनाथजी

हांसी (हिसार) हरियाणा

उन्नति की खुराक अचौर्यव्रत

* आत्मा का विपरीत परिणाम ही कारा है, जेल है : जहां कहीं भी मलिन भाव हैं वहीं पर कारा है और कारा में रहने वाला व्यक्ति कौन होता है ? चोर हां, आप लोग भी कारा में है ।

* सत्य की परिभाषा बहुमत के माध्यम से नहीं होती । सत्य की परिभाषा भावों के ऊपर निर्धारित है ।

* उन्नति की खुराक कुछ अलग हुआ कती है । सत्य व 'अचौर्य' उन्नति की खुराक है ।

* 'दूसरा हमारे लिये दुःख नहीं है, 'दूसरे' को पकड़ने की जो परिणति है, भाव है वही हमारे लिये दुःख व नरक का काम करते हैं ।

जिन्होंने इस विश्व के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लिया ऐसे सर्वज्ञ वीतरागियों ने सर्वज्ञत्व की प्राप्ति के लिये हमें इक सूत्र दिया है–वह है 'अस्तेय' (अचौर्यव्रत) 'स्तेय' कहते हैं अन्य पदार्थों के ऊपर अधिकार जमाने की जिज्ञासा पर अधिकार रखने का वैचारिक भाव, जो असंभव है उसे संभव करने की एक उद्यमशीलता, जो ब्रह्मा को संभव नहीं है यह विषय कषायी उसे संभव करने का प्रयास कर रहा है । स्तेय का अर्थ है – चोरी, ग्रहण–करना, 'पर' का ग्रहण करना । जब तक हम इस रहस्य को नहीं समझेंगे कि–किसके ऊपर हमारा अधिकार हो सकता है ? तक तक हमारा भव निस्तार नहीं होगा । 'स्व' के अलावा 'पर' के ऊपर हमारा अधिकार नहीं हो सकता । चोरी का अर्थ यही है कि हम वस्तु के परिणमन को, वस्तुस्थिति को नहीं समझ पा रहे हैं । 'स्व' क्या है और 'पर' क्या है जब तक यह ज्ञान नहीं होगा तब तक संसारी जीव का निस्तार नहीं होगा ।

सुख के लिये उद्यम करना परमावश्यक है । किन्तु सुख के लिये उद्यम करना परमावश्यक होते हुये भी सुख क्यों नहीं हो रहा ? इस बारे में विवेक–ज्ञान प्राप्त करना भी परमावश्यक है । भगवान महावीर ने बताया है कि–यदि सुख उपलब्ध हो सकता है तो जो (इस समय) विस्मृत है उससे वही उपलब्ध हो सकता है । विस्मृति संसारी जीव को 'स्व' की ही हुई है, 'पर' की विस्मृति आज तक नहीं हुई । 'पर' को पर समझना अत्यन्त आवश्यक है । 'पर' को पर जानते हुये भी यदि हम उसको लेने का भाव करते हैं तो ध्यान रहे हम चोर बन जायेंगे । आप कह सकते हैं कि–इस प्रकार

चोर बनने लगेंयु आप तो सबको चोर सिद्ध कर रहे हे । तो क्या आप अपने आप को साहूकार मान रहे हैं ? ध्यान रहे साहूकार वही है जिसके पास धर्म है, साहूकार वही है जो ऐसे भाव नहीं लाता और विशेष सेठ–साहूकार तो वही है जो पर की चीजों के ऊपर अपनी दृष्टिपात भी नहीं करता । आत्मा के पास दृष्टि है, आत्मा के पास ज्ञान है, दर्शन है, उपयोग है, जानने की देखने की संवेदन करने की शक्ति है, यदि आप इनके लिये भी मना करते हैं तो फिर तो सर्वज्ञ भी चोर सिध्द होंगे, क्योंकि वे भी तीन लोक को देखने–जानने वाले हैं । और हमारा देखना–देखना तो है ही साथ में लेना भी है । हमारी दृष्टि में लेने के भाव हैं, प्राप्ति के भाव हैं और उनकी दृष्टि में लेने के भाव नहीं हैं, केवल देखने के भाव हैं ।

एक दार्शनिक ने जगत् की परिभाषा करते हुए लिखा है कि–'दूसरा जो भी है वही दुःख और नरक है' । यहाँ पर आकर के महावीर के सिध्दान्त से और जितने भी सिध्दान्त होगा तो टकरायेगा भी नहीं । जो अपनी दृष्टि के माध्यम से उपजा हुआ 'सिध्दान्त होगा तो टकरायेगा भी नहीं । जो अपनी दृष्टि के माध्यम से उपजा हुआ 'सिध्दान्त' होगा वह सिध्दान्त नहीं माना जा सकता उन्होंने यह घोषणा कर दी कि यदि 'दूसरा' तुमहारे लिये दुःख नहीं है अपितु दूसरे को पकड़ने की जो परिणति है भाव है वह हमारे लिये दुःख और नरक का काम करती है । सिध्दान्त में यह परिवर्तन आया, यह अन्तर आया । वीर प्रभु सर्वज्ञ वीतरागी–विश्व के अस्तित्व को मानते हैं, विश्व के अस्तित्व को जानते हैं, हमसे बहुत ऊंचा ज्ञान रखते हैं तथा वे इनको जानते हुये भी पकड़ने का भाव नहीं रखते । पकड़ना चोरी है, जानना चोरी नहीं है । हमारी दृष्टि लेने के भाव से भरी हुई है और उनकी दृष्टि ज्ञान भाव से भरी हुई हे । वे साहूकार है और शेष जितने भी लोग हैं वे सब चोर हैं । आप दूसरों को चोर सिध्द नही कर सकते नहीं तो स्वयं चोर बन जायेंगे । हम तो अपने आप को साहूकार सिध्द कर देंगे क्योंकि हमारे पास बहुमत हे । हो सकता है बन्धु ! आप बहुमत के माध्यम से, चाहो तो साहूकार कहला सकते हो, तब तो विश्व का प्रत्येक व्यक्ति साहूकार बन जायेगा । किन्तु साहूकारी में जो मजा आना चाहिये वह मजा आपको एक क्षण के लिये भी नहीं आ रहा है ।

दुनियां की आखिर उस वीर प्रभु की ओर ही दृष्टि क्यों जा रही है ? अर्थ यही है कि हम मात्र चोरी से डरते हैं अर्थात् मोक्षमार्ग सिध्दान्त में जो प्ररुपित शब्द हैं उनसे कुछ ज्ञान प्राप्त करके हम कह सकते हैं कि–हमको साहूकार बनना है । या कि यह कानून लौकिक शास्त्र में भी है, चोरी करना तो इक बहुत बड़ा पाप है ओर चोरी करने वाला सज्जन नागरिक नहीं कहला सकता । इसलिये आप लोग मना करने से, राजकीय सत्ता की आज्ञा के अनुरुप चलना है, इसलिये चल तो देते हैं किन्तु चोरी से बचते नहीं हैं क्योंकि पगडण्डी ढूंढ लेते हैं आप, भले आपको यहाँ पर दण्डित

न किया जावे किन्तु सिध्दान्त के अनुरुप तो आप द्रव्य–प्रधान । "आचार्य समन्तभद्र ने अभिनन्दन भगवान की स्तुति करते हुये लिखा है" कि–हे भगवान ! यह संसारी प्राणी, राजा के भय से माता–पिता के भय से, अपनों से बड़ों के भय से, बलवानों के भय से, अन्याय–अत्याचार, चंच–पाप, नहीं करता किन्तु करने के भाव भी नहीं छोड़ता । ऐसा विद्वान जो कि बन्ध धी व्यवस्था को जानने वाला है, साथ अत्याचारी–अनाचारी भी हो तो वह ऊपर से बच जाये पर अन्दर से नहीं बच सकता ।

राजकीय सत्ता का अधिकार अपराध के ऊपर है और वह उस अपराधी को दण्डित भी करती है पर उस अपराधी के शरीर के ऊपर ही उसका अधिकार है–भावों के ऊपर उसका अधिकार नहीं है । भावों के ऊपर अधिकार चलाने वाला कौन है भावों के ऊपर अधिकार चलाने वाला एक ही है और वह है 'आण्विक शक्ति' जिसे कर्म कहते है । "वह कर्म आपके चारों ओर ही रहता है सी.आई.डी. के गुप्तचरों के समान । गुप्तचर छिपे–छिपे हर कार्य को देखा करते हैं और जहाँ कहीं भी आपका स्खलन देखने में आया वे आपको पकड़ लेते हैं" । इसी प्रकार ज्योंही आत्मा के अन्दर कोई भाव उठा त्योंही वह कर्म अपने आपको (आपके साथ) बांध देता है किन्तु कर्म आपके प्रत्येक प्रदेश पर अपना अधिकार जमा लेते हैं, आप फिर किसी भी प्रकार से बाहर नहीं जा सकते; एक भावदण्ड है और एक द्रव्यदण्ड । मात्र वर्तमान में सांसारिक जेल में न जाना पड़े या बच जाये और बचते भी हैं किन्तु इस प्रकार के भावों से बचेंगे तब वास्तविक रुप से उस चौर्य कार्य से बचेंगे और तभी साहूकार कहलायेंगे । उस साहूकारी का मजा भी आपको तभी मिल पायेगा ।

आचार्य प्रश्न पूछते हैं कि – यहाँ पर भी और भी और आगे भी इस बंध के माध्यम से दुःख–पीड़ा का अनुभव करना पड़ता है । ऐसा कौनसा विद्वान होगा जो कि राग–द्वेष, मोह–मद करके, दूसरों को पर को अपने अन्दर में रखने का भाव करके, बन्धन को सहर्ष स्वीकार करेगा कोई नहीं है ऐसा विद्वान । इसका तात्पर्य यह हुआ कि विद्वान तो इस प्रकार के कार्य नहीं करेगा शेष सब करेंगे ।

आप बाहर से बच रहे हैं और सत्ता भी बचने के लिये बाध्य कर रही है आप लोगों को । किन्तु आप पगडण्डी तो ढुंढ ही लेते हैं इसलिये आप चोरी से कहाँ तक इस रुप से (कि भाव भी उत्पन्न न हो) बचते हैं, यह या तो भगवान ही जानता है या आपकी आत्मा ही जानती है । महाराज ! बिना चोरी के तो कार्य ही नहीं चल सकता । कई लोगों से सुना हे मैंने ऐसा, दंग रह गया मैं ! आप लोगों ने इसको इतना फैला लिया कि इसके बिना काम ही नहीं चलता, एक प्रकार से इसको राजमार्ग पर ही रख दिया । "ऊपर से तो आप कहते है कि चोरी करना पाप है और अन्दर क्या घटाटोप है, यह तो आप ही जानते हैं ।"

एक समय की वात है । एक ब्राम्हण प्रतिदिन नदी पर स्नान करने जाया करता था । एक दिन उसकी पत्नी भी उसके साथ गई । ब्राह्मण स्नान करने के बाद सूर्य के सामने खड़े होकर जल समर्पण करने लगा और मुख से उच्चारण करने लगा – "जय हर हर महादेव, जय हर हर महादेव, और मन में है सो है ही ।" 'जय हर हर महादेव' तो समझ में आ गया पर 'मन में है सो तो है ही' सूत्र समझ में नहीं आया । पास ही स्नान करते हुए एक मित्र ने पूछा कि – भैया, आज आपने सूत्र ही बदल दिया, क्या बात है ? कुछ खास नहीं भाई, मैं प्रतिदिन जय हर हर गंगे, हर हर गंगे कहता था किन्तु आज मेरी पत्नि भी साथ में आई है, पत्नी का नाम 'गंगा है, इसलिये आज कैसे कहूँ ? अतः आज मैं कह रहा हूँ ? जय हर हर महादेव और मन में है सो है ही ।

इस प्रकार आप लोग भी राजकीय सत्ता से कहते हैं कि भई हम तो चोरी नहीं करेंगे पर करे बिना भी नहीं रहेंगे क्योंकि 'मन में है सो है ही ।' भगवान जानते हैं आपकी स्थिति को, आपकी इस लीला को । किस प्रकार हृदय में घटाटोप हो रहा है ! बाहर से तो आपने चोरी करना छोड़ दिया वहुत अच्छा किया पर अब अन्दर से भी थोड़ा छोड़ना, थोड़ा क्या छोड़ना बल्कि कहना चाहिये कि छोड़ने की भूमिका ही अब आयेगी । अभी तक आप लोगो ने छोड़ा थोड़े ही है । हम दूसरे पदार्थ का ग्रहण कर भी नहीं सकते अतः ऐसी स्थिति में उसका विमोचन भी नहीं कर सकते, ऐसी धारणा बन गई है लोगों की । पर जब वस्तु का परिणमन जानने में आ जायेगा तब आप लोगों को विदित होगा कि वस्तुतः हम किसी को ग्रहण नहीं कर सकते, किन्तु भावों के माध्यम से ग्रहण किया जाता है ।

जिस समय हम भावों का निर्माण करते हैं उसी समय जो हमारा कर्म सिध्दान्त है उसके अनुरुप कार्य हुआ करता है और वह एक बंधन हो जाता है । उस बन्धन को हम लोग नहीं समझ पाते इसलिये हम अपने आपको स्वतन्त्र अनुभव करना प्रारम्भ कर देते हैं, किन्तु जब वह वचन से व काय से क्रियान्वित हो जाता है तब सोचते हैं कि कहीं जेल में बंद न हो जायें ।

"राजकीय सत्ता वह सत्ता है जो आपके शरीर व वचन पर नियन्त्रण रखती है और कर्म सिध्दान्त वह सत्ता है जो आपके भावों के बारे में देखता रहता है ।" इस प्रकार आत्मा को इन दो सत्ताओं के बीच में रहकर अपने आप को सही–सही साहूकार स्थापित करना है । जो ऐसा कर रहा है वह जिनेन्द्र भगवान के मार्ग का प्रभावक है और साथ में अपनी आत्मा का भी उत्थान कर रहा है । बाहर व आभ्यन्तर ये दोनों कार्य अनिवार्य है । जब बाहर से भी जेल जाने से नहीं बच पाते तो ऐसी

स्थिति में अन्दर क्या होगा ? जब तक अन्दर तक नहीं पहुंचेगे तब तक हमारी निधि क्या है । यह आप लोगों को विदित नहीं होगा ।

एक व्यक्ति, जानता है कि कर्म सिध्दान्त क्या है और किस प्रकार मुझे आचरण करना है किन्तु वस्तुस्थिति न समझने का परिणाम है कि कि वह इन दोनों सत्ताओं (राजकीय काम कर्म) का उल्लंघन कर देता है । राजकीय सत्ता कानून के अनुरुप आपको कुछ समय के लिये या आजीवन जेल में रख सकती है, किन्तु वह कर्म सिध्दान्त ? वहां पर भी कारा है ? हां वहाँ पर भी कारा है और यहाँ पर भी कारा है ? जहां कहीं मलिन भाव है वहीं पर कारा है ओर कारा में रहने वाला व्यीक्त कौन होता है, चोर ? हां, तो आप लोग भी कारा में हैं ।

एक व्यक्ति ने कहा कि–महाराज ! जयपुर आये हैं तो इक प्रवचन कारागृह में भी दें तो अच्छा होगा । तो क्या यह कारा नहीं है ? संसार भी तो कारा है, यह देह भी तो एक कारा है, जो व्यक्ति इसको कारा नहीं समझता वह व्यक्ति महान भूल में है । मैं कैसे कहूँ कि मै जेल में नहीं हूँ, क्योंकि यह देह भी तो जेल है, कारा है । **आप मात्र राजकीय सत्ता जेल को ही जेल मानते हैं किन्तु वस्तुतः आत्मा के लिये विपरीत परिणमन ही जेल है ।** और हमारी वस्तु है 'आत्मतत्व', उसका जो विपरीत विरुप परिणमन है, वही हम लोगों के लिये जेल बना हुआ है । वह सत्ता (आत्मा) हमें दिख नहीं पा रही और जब तक देखने में नहीं आयेगी तब तक वह लुटती चली आयेगी और हम उसको लुटाते चले जायेंगे और हम अपराधी बनते रहेंगे, दरिद बनते रहेंगे, दीन बनते रहेंगे ओर भटकते रहेंगे । ध्यान रहे, राजकीय सत्ता के माध्यम से जो चोर सिध्द किया गया है, उस चोर की व्यवस्था राजकीय सत्ता करती है और करती आयी है, वह कम से कम दो समय खाना खिलाती है । मैं पूछता हूँ कि इस (देह की) कारा में जो अनादि काल से आत्मा बैठा है, इसके लिये क्या कोई ऐसी सत्ता है जो खाना खिला रही हो, पिला रही हो, अपनी खुराक दे रही हो ? आत्मा को इस कारा से निवृत्त करने का प्रयास करें । महाराज ! इसके लिये वकील भी तो चाहिये, फिर इसके लिये कोई कोर्ट भी तो चाहिये । हाँ, आप वकील के माध्यम से उस कारा से तो छूट सकते हो; सच–झूंठ बोलकर छूट सकते हो क्योंकि वहुमत का जमाना है, बहुमत हो जायें तो छूट जायेंगे और घूंसखोरी हो जायेगी तो छूट जायेंगे किन्तु यहाँ पर कोई वकालत करने वाला नहं है, स्वयं चोर को वकालत करना स्वीकार करना होगा ।

वह आगे के लिये जब यह स्वीकृति ले लेता है कि अपनी आत्मा से कि मैं नहीं करुंगा, तब तक यह छोड़ा नहीं जायेगा । – **"छूटे भव–भव जेल', भव–भव में जो परिभ्रमण करना पड़ रहा है वह जेल है, विस्तृत जेल ।** एक संकीर्ण जेल हुआ

करता है और एक विस्तृत जेल । विस्तृत जेल में घूमने के लिये भी कुछ सुविधायें होती हैं किन्तु रहेगा तो जेल में ही । ये चार प्रकार की गतियां, चार प्रकार के भव क्या जेल नहीं है ? हम इस देह रुपी जेल से चोर के रुप में बैठकर भी दूसरे जेल वाले व्यक्तियों को (राजकीय सत्तावाले कैदियों) जो कैदी हैं, उनको यदि हम उपदेश दें तो एक चोर दूसरे चोर को कभी डांट नहीं सकता । चोर-चोर को उपदेश नहीं दे सकता । वह कह सकता है कि आपसे अधिक शुध्दता पवित्रता मेरे पास है इसलिये उपदेश की कोई आवश्यकता नहीं है ।

हम अनादिकाल से अपराध करते आ रहे हैं, छूटने के भाव तो आज तक किसी ने किया ही नहीं । प्रत्येक समय गल्तियां होती चली जा रही है, अपराध होता चला जा रहा है और स्थिति यह बन गई है कि हम अपने आप को 'अपराधी हैं कि नहीं' यह तक नहीं समझ पा रहे । इसमें एक कारण है कि-जब तक अपराधी एक रहता है तब तक वह अनुभव करता है कि-हां, मै अपराधी हूँ, मैने अपराध किया है, मैं उसका यह दण्ड भोग रहा हूँ । जब अपराधियों की संख्या बढ़ जाती है तो फिर उसमें भी एक प्रकार का मजा आना प्रारम्भ हो जाता है; कुछ समय पूर्व सुना था कि सत्याग्रह करने वाले चलाकर अपने आप को जेल में प्रविष्ट करा रहे हैं । केवल एक-दो व्यक्तियों को जेल में बंद करते तो कोई जाने की होड़ नहीं करता पर सब जा रहे हैं तो शेष लोग सोचते हैं कि चलो वहां पर विशेष प्रबंध होगा । बहुमत के कारण हम अपने अपराध को भूलते चले जा रहे हैं, एक दूसरे के साथी बनते चले जा रहे हैं ।

इस शरीर को कारा समझो । यहाँ पर आप (शरीर वाले) बहुमत या बहुसंख्यक होने से 'स्वतन्त्रता का अनुभव कर रहे हैं', यह सिध्द होंगे और आप स्वतन्त्र सिध्द होंगे क्योंकि मुक्त जीवों की संख्या व संसारी जीवों की तुलना की जाये तो संसारी जीवों की संख्या अधिक होगी । तो साहूकार वे हैं कि आप है ? चोरवे हैं कि अचप हैं ? सत्य की परिभाषा बहूमत के माध्यम से नहीं होती, साहूकार की परिभाषा बहुमत के माध्यम से नहीं बनती, इक के माध्यम से भी नही बनती अपितु सत्य की परिभाषा भावों के ऊपर निर्धारित है । अतः अहर्निश अपने परिणामों को सुधारने का प्रयास करना चाहिये । लौकिक सत्ता के माध्यम से जो कुछ भी हमारी स्थिति सुधरती है उससे इन्कार नहीं है, बाहरी स्थिति का कोई निषेध नहीं है, किन्तु इतना (सा) ही हम लोगों का धर्म नहीं है । इसके माध्यम से हम लोग इक ही भव में कुछ समय के लिये आनन्द देख सकते हैं, सुख देख सकते हैं, यश ख्याति मिल सकती है किन्तु जो विकारी परिणति है, उस परिणति को हटाये बिना हम भव-भव में आनन्द की अनुभूति नही कर सकते । "जब यह भव-भ्रमण नहीं रहेगा तब आनन्द की अनुभूति होना प्रारम्भ हो जायेगी ।"

आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि-चोर वह है जो 'पर' वस्तु का ग्रहण करने का संकल्प करता है चाहे उसका संकल्प पूर्ण हो या न हो, उसके विचार साकार हो या न हो । वह वस्तु स्थिति को समझ नहीं रहा इसलिये उसके विचार साकार नहीं होंगे कि - मै इसको ग्रहण करु, मैं उसको ग्रहण करु । प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व भिन्न-भिन्न है और उस अस्तित्व के ऊपर हमारा कोई अधिकार नहीं जम सकता, संसारी प्राणी के लिये यह समझना आवश्यक है और आचार्य समझा रहे हैं-यह प्रयास कर कि यह जेल छूटे । हे प्रभु ! हमारा यह झेल कब छूटेगा ?

आप खुश हैं, हँसते हैं कि-हम तो जेल में हैं ही नहीं और जो दूसरे (लौकिक) जेल में हैं उनको देखकर हँसते है । पर बन्धुओ ! वह जेल-जेल नहीं है, वह तो नकली, दिखावटी जेल है, क्योंकि उसके परिणाम तो अभी भी स्वतन्त्र हैं, वह भाव के माध्यम से अभी भी चोरी कर रहा हैं । जेल में रहते हुये भी वह भावों के माध्यम से अपराधी रहा है । उस जेल में मात्र शरीर के ऊपर अधिकार हुआ है, मात्र शरीर बंधन में है किन्तु वह आत्मा अभी भी स्वतन्त्र नहीं करेगा, तीन काल में नहीं करेगा ।

पराई वस्तु पर दृष्टि जाये भले ही किन्तु वह दृष्टि पकड़ने की दृष्टि नहीं होनी चाहिये । **"आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि-दूसरे को पकड़ने के भाव ही नरक व दुःख है ।"** जितना आप देखेंगे-जानेंगे उतना सुख व आनन्द बढ़ता जायेगा । विश्व को जानेगा तो और ज्यादा बढ़ेगा, इतना कि जिसकी कोई सीमा नहीं रहेगी, अनन्त जिसका कोई अन्त नहीं, जिसका कोई छोर नहीं, जिसका कभी अभाव नहीं, जिसमें किसी प्रकार की कभी नही आ सकी, ऐसा है वह अनन्त सुख । वह सुख कौन प्राप्त कर सकता है ? ऐसा सुख वही प्राप्त कर सकता है जो जितना जानेगा, जितना पहचानेगा, जितना देखेगा । किन्तु कैसे देखेगा ? कैसे जानेगा ? कैसे पहचानेगा ? अपने में होगा जब, अपने ऊपर अधिकार रखेगा तब पहचानेगा, जानेगा, देखेगा ।

[1]सकल ज्ञेय ज्ञायक, तदपि निजानन्द रस लीन"

- विश्व को जाना, विश्व के "ज्ञेयरुप पदार्थ को पहचाना, देखा किन्तु आनन्द की अनुभूति विश्व में नहीं की अपितु - 'निजानन्द रसलीन ।' आप लोग सकल ज्ञेय तो हैं ही नहीं किन्तु आपके ज्ञेय 'शकल है शकल का' अर्थ है टुकड़े, शकल का अर्थ है टुकड़े, शकल आ अर्थ है ऊपर का आकार इतना ही आप जानते हैं । आपका ज्ञान इतना सीमित है कि मात्र 'शकल' को देख सकता है -

[2]शकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, धनानन्द रसलीन'

आप दूसरे पदार्थ में लीन हैं और समझ रहे हैं कि बहुत सुखी हो गये हैं, "हम बहुत सन्तुष्ट हैं, बिल्कुल राम राज्य चल रहा है; भले ही अन्दर रावण का ताण्डव नृत्य हो रहा हो, पर बाहर से तो राम-राज्य चल रहा है ।"

यह वस्तुस्थिति के बिल्कुल विपरीत श्रध्दान है । इसी से कहते हैं कि-हमारी आत्मा लुटती जा रही है, सत्ता का विनाश होता चला जा रहा है क्योंकि वहाँ पर सत्य का अभाव है । जो सत्य का अनुपालन करेगा वह स्तेय कर्म को नहीं अपनायेगा और जो स्तेय कर्म को अपनायेगा वह सत्य का अनुपालन नहीं करेगा । यद्यपि इस वृतान्त में लौकिकता आ सकती है किन्तु उस लौकिकताके माध्यम से उसे सिध्दान्त की ओर भी ग्रहण कर सकते हैं ।

एक व्यक्ति रोगी था, रोग शरीर के अन्य किसी अंग में नहीं था बल्कि मस्तिष्क में था । उसे बहुत निंद से पीड़ा थी । इलाज के लिये उसने बहुत सारा पैसा चोरी चारी करके, अन्याय करके, एकत्रित किया और अस्पताल में भरती हो गया । जब उसके मस्तिष्क का ओपरेशन ठीक-ठीक हो चुका, डाक्टर ने अच्छा ऑपरेशन किया, शल्यचिकित्सा अचछी हुई । इतना सब होने के उपरांत उसका एक मित्र आया और पूछा कि - क्यों भैया ! ठीक हो । उसने उत्तर दिया - हाँ, पहले से बहुत अच्छा है, बहुत आराम है । कुछ दिन पश्चात् डाक्टर कहता है कि - एक गलती हो गई, हमने आपरेशन तो कर दिया, पर मस्तिष्क को अपने स्थान पर नहीं रखा, वह बाहर ही मेज पर रह गया । रोगी कहता है कि-कोई बात नहीं है, **"चिन्ता मत करो क्योंकि मैं राजकीय नौकरी करता हूँ । वहाँ बिना मस्तिष्क के भी काम चल जायेगा ।"** इस दृष्टान्त को सुनकर मैंने सोचा कि-इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हम सत्य को पा सकते हैं, पर चोरी क्या है ये भी हमको पता नहीं है, फिर भी हम दावा कर देते हैं कि हम चोर नही है । वे दोनों (डाक्टर व मरीज) ही चोर हैं क्योंकि वह डाक्टर भी राजकीय सेवा में है, वह भी अपना कार्य सुचारु रुप से नहीं करता । उसको जो एम.बी.बी.एस. की उपाधि मिली है वह कभी भी समाप्त होने वाली नहीं है इसलिये वह आजीवन डाक्टर है यह सिद्ध हो ही गया और वह रोगी भी राजकीय सेवा में है, वह भी सोचता है कि मुझे किसी प्रकार भी राजसत्ता निकाल तो सकती नहीं है, अब तो मैं पेन्शन लेकर ही निकलूंगा । इसलिये दोनों को कार्य करने की कोई आवश्यकता नहीं है । ऐसी परिस्थिति में हम साहूकार हैं, सत्य हैं, कैसे कह सकते हैं ? यह तो लौकिक बात है । इसी प्रकार हम समझ लेते हैं कि (सिध्दांत में भी) हम चोर नहीं हैं क्योंकि यह सब कर्म की देन है । आत्मा तो साहूकार है, ज्ञायक है, शुध्द-पिंड, उसमें किसी प्रकार से पर का सद्भाव नहीं है और उसका पर में सद्भाव नहीं है; उसमें पर का सद्भाव नहीं है, यह त्रैकालिक सत्य है । इस एक सूत्र को लेकर बैठ गये और अंधाधुंद चोरी भी करते है और बोलते हैं कि जो कुछ होता है वह कर्म

की देन है; आत्मा बिल्कुल अस्पृष्ट है, असंपृक्त है, आत्मा अपने से अन्य है, पर से अन्य है, पर का अपने में अपने का पर में किसी भी प्रकार से समावेश नहीं है । प्रत्येक के क्षेत्र भिन्न, प्रत्येक के काल भिन्न, प्रत्येक के दव्य भिन्न, प्रत्येक के स्वभाव भिन्न, सब भिन्न-भिन्न है, इस प्रकार मानने वाले हैं । क्या यह भाव सच्चाई युक्त है ? यह एक प्रकार से कायारता है । एक प्रकार से पुरुषार्थ-विमुख होना है ।

ये डाक्टर व रोगी दोनों अपने से भिन्न है, 'पर' में उनका जीवन चल रहा है । इस प्रकार का जीवन तो तिर्चयों में भी होता है । गाय, भैस, कुत्ते भी अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं । मात्र जीवन को चलाना नहीं है, जीवन अपने आप अनाहत चल रहा है । जीवन को उन्नति की ओर बढ़ाने को ही मानव-जीवन की सफलता कहते हैं । साफल्य के अभाव में इस जीव को दुःख का अनुभव करना पड़ रहा है फिर भी इसकी खुराक कुछ अलग है, उन्नति की खुराक कुछ अलग हुआ करती है । उन्नति के लिये कुछ प्रयास करना चाहिये । यह सत्य और **"अचौर्य उन्नति की खुराक है जीवन की खुराक नहीं है ।"** जीवन तो असत्य के साथ भी चल सकता है, जीवन चोरी के साथ भी चल सकता है, किन्तु वह जीवन-जीवन नहीं कहलायेगा, वह भटकन है । आप लोगों का यह जीवन-जीवन नहीं भटकन है क्योंकि सत्य के साथ, अचौर्य के साथ आपका संयोग नहीं है । "तो फिर क्या करें हम ? करने के लिए मैं क्या कहू ?" आपको यदि उन्नति चाहिये, विकास चाहिये, उत्थान चाहिये तो अपनी आत्मा का, तो आपको वीतरागता की अनुभूति करनी होगी, चाहे आज करो या कल, वीतरागता की अनुभूति किये बिना आप सर्वज्ञत्व को प्राप्त नहीं कर सकते और सर्वज्ञत्व के बिना अनन्त सुख का अनुभव कर नहीं सकते, संसार का अभाव नहीं हो सकता ।

इस अनादिकालीन पीड़ा को मिटाना है । पीड़ा यह नहीं है कि-भूख लग गई है, पीड़ा यह नहीं है कि हमको धन नहीं मिला, वस्तुतः पीड़ा यह है कि हमारा ज्ञान अधूरा है, जब कि हम समझ रहे हैं कि-हम पूर्ण ही है । हम पूर्ण नहीं है ।

चोरी को तो आप छोड़ सकते हैं किन्तु चोरी क्या है, पहले यह समझना परमावश्यक है । प्रत्येक व्यक्ति समझता है कि-मैं साहूकार हूँ । क्या चोरी के त्याग का संकल्प लिया है ? नहीं आवश्यकता भी क्या है ? हाँ, मन कह रहा है कि-त्याग मत कर । इस सिध्दांत को समझिये - आप, अनादिकाल से यह परम्परा चल रही हैं, यह कोई नवीन परम्परा नहीं है, इस पर कुठाराघात करने के लिये आप उद्यत हो जाओ । यह व्रत एक बार में पूर्ण नहीं होगा यह भी ध्यान रखना । इस पर बार-बार कुल्हाड़ियों से प्रहार करना आवश्यक है और जोर के साथ प्रहार करने की आवश्यकता है । पूरा दम लगाकर पटको उसके ऊपर कुल्हाड़ा, तभी वह जड़, वह मूल कट सकता है क्योंकि यह बहुत दिन का संस्कार है ।

पर के ऊपर ग्रहणभाव को लेकर जो हमारी दृष्टि हुई है उसको आप एक साथ नहीं छोड़ सकेंगे, पर छोड़े बिना भी निस्तार नहीं है । तो क्या ये सब के सब चोर सिध्द हो गये और यह चोर बाजार ? मुझे ऐसा लगता है कि "इसीलिये वर्तमान में भगवान महावीर यहाँ पर नहीं हैं क्योंकि एक चोर बाजार में यदि कोई साहूकार हो भी तो उस साहूकार को भी चोर की ही उपाधि मिलेगी ।"

प्रत्येक व्यक्ति पर को चोर सिध्द करता है और स्वयं को साहूकार सिध्द करता है । "चोर–चोर को डाँट नहीं सकता ।" हाँ, एक चोर अपनी चोरी की गलती को पहचान करके उसको यदि छोडने का प्रयास कर रहा है तो वह चोर नहीं है, यह ध्यान रखना । आचार्य कहते हैं कि जिस समय जीव के चोरी के भाव रहते हैं उसी समय जीव को चोर कहा जाता है और जिस समय भाव नहीं है, जिस समय छोड़ने के भाव हैं, उस समय साहूकार कहा जाता है, साहूकार कहा क्या जाता है वह साहूकार है ही ।

जो व्यक्ति अनागत में भी चोरी करना चाहते हैं, वे साहूकार न बने हैं, न बनेंगे । अतीत में तो वह साहूकार था ही नहीं, इसको तो वह मंजूर कर लेता है और आगे के लिये यदि वह प्रायश्चित करने को तैयार हो जाता है तो वह साहूकार बन सकता है । किन्तु तब तक नहीं बनेगा जब तक कि अपने संस्कारों को पूर्ण रुप से मिटा नहीं पायेगा । "आप चोर से नहीं, चौर्य भाव से नफरत कीजिये; पापी से नहीं, पाप से धृणा कीजिये–"

पापी से मत पाप से धृणा करो अयि आर्य ।
नर से नारायण बनो, समयोचित कर कार्य ॥

वह अनादिकालीन चोरी का कार्य उसने किया (जीव ने) इसमें तो कोई सन्देह नहीं है, फिर भी **वह त्रैकालिक संभव नहीं है कि जिसने आज तक चोरी की है, वह आगे भी चोरी का ही कार्य करता रहे** । अज्ञान दशा में की है, कोई बात नहीं किन्तु अब तो आँखें खुल गई, अब तो नींद खुल गई, अब तो दृष्टि मिल गई कि मेरा क्या कर्तव्य है ? मुझे क्या करना हे ? जिस व्यक्ति को यह विदित हुआ, वह व्यक्ति किया हुआ जो अनर्थ है उसको अनर्थ समझकर छोड़ देगा । उसको ऐसा ज्ञान मिला है इसलिये अब चोरी से भी निवृत्ति लेनी है किन्तु चोर से नहीं । वह चोर तब तक ही है जब तक कि चोरी करता है । चोरी छोड़ देंगे तो साहूकार बन जायेंगे ।

आप संसारी कब तक कहलायेंगे ? जब तक ये कार्य करते रहेंगे, जब इनको छोड़ देंगे तो मुक्त कहलागेंगे, भगवान कहलायेंगे । आप किसी को चोर मत कहिये ।

आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि–जिस व्यक्ति को आपने 'चोर' कहकर पुकारा वह व्यक्ति चोर है, आप बरसों तक ऐसे पुकारते रहेंगे तो ऐसी स्थिति में वह यह समझ लेगा कि 'मै तो चोर हूँ ही, अब चोरी करने का भाव छूटे कैसे ?' इसलिए यदि चोर की चोरी छुडानी है तो उसे चोर मत कहो, उसे समझाओ कि आपका यह कार्य ठीक नहीं है, आपका कर्तव्य तो यह है, तो अपने आप चोरी का त्याग हो जायेगा । किन्तु हम तो डांटते हैं दूसरों को कि तुम तो चोर हो, तुमको मालूम नहीं कि "भगवान महावीर का सिध्दांत क्या है ? प्रत्येक समय भावों का परिणमन हो रहा है । वर्तमान में पूर्व का भी अभाव है ओर भविष्य का भी अभाव है ।" जब चोर को इस प्रकार डांटा जा रहा है तो वह इस समय चोरी के भाव छोड़ सकता है और आगे जाकर ओर भी बड़ा बन सकता है । उसे सिध्दांत समझाओ कि–यह चोरी ठीक नाही है ।

आप आत्मा को ठीक नहीं मान रहे किन्तु आत्मा तो ठीक है, आत्मा का परिणमन ठीक नहीं है, वह पापमय है । इसलिये भगवान महावीर ने किसी को भी चोर नहीं कहा अपितु प्रत्येक व्यक्ति को कहा कि – **प्रत्येक व्यक्ति में प्रभुत्व छिपा है, जैसा मै उज्जवल हूं, वैसे ही आप भी उज्जवल हैं, मात्र ऊपर एक राग का आवरण है ।** वहा (आत्मा) मणि हे, रत्न है, हीरा है, वह स्फटिक मणि धूल में गिरी हुई है, उसे धूल से बाहर उठा दो वह चमकती हुई नजर आयेगी । इसीलिये किसी को चोर मत कहो । दूसरी बात यह है कि–हमारा अधिकार ही क्या है दूसरे को चोर कहने का, जब तक हम साहूकार नहीं बनेंगे तब तक दूसरे को चोर सिध्द करने का ? तब यह सारी (लौकिक) व्यवस्था फेल हो जायेगी । मै फेल करने के लिये नहीं कह रहा हूँ बल्कि अपने आप को पूर्ण साहूकार सिध्द करने के लिये कह रहा हूँ । आप पूर्ण साहूकार बनों । बाहर से तो आप साहूकार बन जाते हो किन्तु अन्दर आत्मा में घटाटोप तो वही है चोरीपन का ।

जब यह रहस्य एक राजा को विदित हुआ तो वह राजा अपनी सारी सम्पदा व परिवार को छोड़कर जंगल का रास्ता ले लेता है । किसी से कुछ नहीं बोलता, बस कदम आगे बढ़ते चले गये जंगल की ओर, भयानक जंगल की ओर जहाँ निर्जनता तो है ही साथ ही पाश्विकता भी बहुत है, जहाँ हिंस्त्र पशुओं का राज्य है, वे वहाँ पर चले गये और आत्मलीन हो गये, इतने लीन हो गये कि अपने आपको भी भूलते चले गये । जो ग्रहण का भाव था मन में वह तो सब राजकीय सत्ता मे ही छोडकर आ गये थे, अब असंपृक्त हैं । बहुत दिन व्यतीत हो गये तब परिवार के लोगों को उनके दर्शन करने के भाव जागृत हुये और वे चल पडे उन्हें ढूंढने । चलते–चलते आगे रास्ता बहुत संकीर्ण होता गया, इतना संकीर्ण कि मात्र पगडण्डी के अलावा कुछ था ही नहीं, बहुत विकट । पर दर्शन तो करने हैं । माँ कहती है कि–मेरा बेटा कितना सुकुमार था ? आज तो उसके दर्शन करने हैं । पत्नी सोचती है कि–आज मुझे अपने पतिदेव

के दर्शन करने हैं । अभी उसकी दृष्टि में वे पतिदेव ही थे, मुनि महाराज नहीं थे, सब चले जा रहे हश्र, क्योंकि संकल्प कर लिया है कि–आज तो दर्शन करने ही है । बढ़े चले जा रहे थे सब । आगे रास्ते में दो शाखायें (मार्ग) निकली, अब किधर बढ़े ? एक राह पर चल पड़े, चलते–चलते मिल गये मुनि महाराज । देखते ही बहुत उल्लास हुआ । बीते दिनों की स्मृति हो आई । पत्नी सोचती है कि–देखो वे ही राजा, वही पतिदेव, वही तो है सब कुछ पर ये सब को छोड आये हैं, खैर कोई बात नहीं जीवित तो हैं, यही बहुत अच्छा है । माँ सोचती है–मेरा लड़का अच्छा कार्य कर रहा है और वह माँ प्रणिपात हो जाती है चरणों में, पत्नी भी प्रणिपात हो जाती है । मुनि महाराज ने सब आगन्तुकों को समान दृष्टि से देखा । परिवार जनों मे् अब एक इच्छा और हो गई कि–अब ये बोलेंगे कुछ, मुख खोलेंगे । पर वे बोले नहीं, अब मात्र निहारना रह गया था । उन लोगों ने सोचा कि कोई बात, नहीं मौन होंगा । ऐसा विचार कर वे 'नमोस्तु' कहकर वापस चलने को हुये । पर आगे रास्ता बहुत विकट और धुंधला–धुंधला सा दिख रहा था । माँ बोली–महाराज । आप मोक्षमार्ग के नेता हैं **'मोक्षमार्गस्य नेतारं'**,[१] मोक्षमार्ग को बताने वाले हैं तो संसार–मार्ग तो बता ही दीजिये, केवल यह बता दें कि यह रास्ता ठीक रहेगा कि नहीं ? महाराज क्या कहें ? दुविधा में पड़ गये । महाराज मौन ही रहे । माँ बोली–महाराज । मौन हो तो सिर्फ इशारा ही कर दो । महाराज अचल बैठे रहे । मौनमुद्रा देखकर माँ ने सोचा कोई बात नहीं, यही मार्ग ठीक दिखता है, चलो इधर ही चलें और वे चले गये । कुछ दुर बढ़ने के उपरांत एक चुंगी चौकी थी, वह डाकुओं के रहने का स्थान बन गया था । रास्ते में जो कोई भी आता था वे उसे लूट लेते थे । उन (राज परिवारवालों) को देखकर डाकुओं ने कहा कि–जो कुछ भी तुम्हारे पास है वह रखते जाओ । "वह माँ, पत्नी, लड़का सभी दंग रह गये, घबरा गये । माँ बोली–"ओफ ओह ! अन्याय हो गया । अब यह पृथ्वी टिक नहीं सकेगी, अब इसकी गति पाताल की ओर हो जायेगी, यह आसमान फट जायेगा । अब जीवन में न्याय ही न रहा ।" अब कही भी धर्म नहीं मिलेगा, अब कही भी शरण नहीं है । हमने तो सोचा था–हमारा लड़का तीन लोक का नाथ बनने जा रहा हे, वह मार्ग प्रशस्त करेगा, आदर्श मार्ग प्रस्तुत करेगा, दयाभाव दिखायेगा और वह इतना निर्दयी है कि यह भी न कहा कि इस रास्ते से मत जाओ, आगे डाकुओं का दल हे । ओफ ओह, काहे का धर्म, काहे का कर्म ? धिक्कार है उस बच्चे को । अब भी वह बच्चा कह रही है, मुनि महाराज नहीं कह रही है । अभी लड़का है, ज्ञान तो है नहीं, उसे तो यह भी मालूम नहीं कि दया करनी चाहिये । दयाभाव जिसके पास नहीं है, वह क्या तीन लोक का नाथ बनेगा । जो अपनी माँ को भी, जिसने नौ माह तक अपनी कूख में रखा, प्रसूति–पीड़ा सहन की और जन्म दिया, बहुत सारी रातें बिना नींद के काटीं, इसमां के उपकारों का उसने कुछ भी प्रतिदान नहीं दिया । जिसने माँ के ऊपर थोड़ी भी एहसान की बुध्दि, करुणा बुध्दि नहीं रखी, वह क्या तीन लोक

के ऊपर करुणा कर सकता है ? यह बात सत्य है कि संसार में कोई किसी का नहीं है ।" वह सरदार सुनता है ओर अपने शिष्यों को कहता है – इसे मत छेड़ो । इसकी बाते सुनने दो । जब वह सुनाना बन्द कर देती हैं तब वह सरदार पूछता कि–माँ तू क्या कह रही है ? ये अभिशाप किसको दे रही है ? माँ कहती कि–मै आपके लिये नहीं कह रही थी, मैं तो उसके लिये कह रही हूँ । उसको दुत्कार रही हूँ, उसको मैने जन्म दिया है इसलिये अपने जीवन को भी धिक्कारती हूं । सरदार ने कहा–पर यहाँ तो कोई है ही नहीं, तुम कह किसके लिये रही हो ? माँ कहती है–यहाँ से कुछ दूर पर बैठा है न वह नग्न । वही था मेरा लड़का, अब मैं लड़का भी नहीं कह सकती, वह बहुत दुष्ट है । घर छोड़कर यहाँ भाग आया । जब तक घर पर था प्रजा की रक्षा करता था, यहाँ पर आ गया तो माँ को भी भूल गया, माँ के ऊपर थोड़ीसी भी उपकार की दृष्टि भी नहीं की, एक बोल तक नहीं बोला वह । सरदार ने कहा–समझ गया हम पाँच सौ डाकू भी अभी उसी रास्ते से आये थे, उसके पास कुछ नहीं मिला तो उसको पत्थर मारकर, नंगा कह कर चले आये । उस समय भी उसके मुख से वचन नहीं निकले थे । माँ ने कहा–अच्छा । उस समय भी कुछ नहीं बोला, आपके साथ भी इसी प्रकार का व्यवहार किया ? सरदार बोला–मुझे तो वह बहुत पहुँचा हुआ व्यक्ति दिख रहा है क्योंकि माँ को समझ करके माँ के लिये भी कुछ नहीं कहा । हमने गाली दी थी पर आपने तो प्रणिपात किया था उनके चरणों में फिर भी हमारे लिये "कोई अभिशाप नहीं था और आपके लिये वरदान नहीं ।" ऐसे व्यक्ति का मैं अवश्य दर्शन करुँगा । यह कहकर वह सरदार पहले माँ के चरण छू लेता है । धन्य हो माँ, जो तुम्हारी कोख से इस प्रकार का पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ, "जिस व्यक्ति की दृष्टि में संसार समान हे । **जिस व्यक्ति की दृष्टि में समानता आ जाती है, वह व्यक्ति सामने वाले वैषम्य को भी श्रध्दा के रुप में परिणत करा देता है,** इसमें कोई संदेह नहीं है । वह पाँच सौ डाकुओं को लेकर मुनिराज के पास चला जाता है और नतमस्तक हो जाता है – "बस मुझे भी अपना चेला बना लीजिये और उन डाकुओं का एक साथ उन चरणों में समर्पण हो गया ।"

डाकू व लडाकू बहुत किस्म के हुआ करते हैं । किन्तु जब वे रहस्य को समझ लेते हैं तो उस डाकूपन को छोड़ देते हैं और वह माँ जो बहुत धार्मिक बातें सुनती थी वह ? मुनिराज की दृष्टि में सब समान थे । यदि वह उस समय मुझे रास्ता बता देता तो ये पाँच सौ मनुष्य (डाकुओं का दल) दिगम्बरी दीक्षा नहीं ले सकते थे – माँ सोचती हैं ।

उनका वह मौन, उनकी वह समता क्या दया का निषेध कर रही थी ? क्रूरता का समर्थन कर रही थी ो नहीं, न वह क्रूरता का समर्थन था न किसी का आदर भाव, अपितु वह समता मुझे तो वस्तुस्थिति बता रही थी ।

"सर्वार्थसिध्दि में आचार्य श्री पूज्यपाद लिखते हैं कि–वह नग्न दिगम्बर मुद्रा ही पर्याप्त है विश्व के लिये, वह सही–सही रास्ता बता सकती है, किंतु उस नग्न मुद्रा में समता की छटायें अवश्य आनी चाहिये ।" चोर व साहूकार सब के प्रति समान भाव जागृत होना चाहिये क्योंकि चोर वह साहूकार ये तो लौकिक दृष्टि से हैं । अन्दर वही आत्मा है, वही चेतन है, वही सत्ता है जो भगवान के समान है । यह ऊपर का आवरण उतर जाये तो अन्दर तो वही है । राख में छिपी हुयी, राख में दबी हुई ज्वाला के समान; बाहर राख है किंन्तु उसको फूंक मार दो, अन्दर वही उजाला, वही उष्णता है जो उष्णता तीन लोक को प्रभावित कर सकती है, वैकारिक परिणामों को समाप्त कर सकती है । समझने की बात यह है कि–यह हुई **"उन मुनिराज मी समता, माँ की ममता और उन डाकुओं की क्षमता जिन्होंने अपने जीवन भर के लिये डाकूपन को तिलांजली दे दी ।"**

अब मैं आपसे पूछना चाहूंगा कि–इन सामने बैठे डाकुओं का आत्म–समर्पण कब होगा ? इक भवन में रहकर भी डाकू बन रहा है और एक जंगल में रहकर भी डाकूपन छोड देता है । मैं किसको कहूँ डाकू, किसको कहूँ लडाकू और किसको कहूँ आत्म दृष्टि रखने वाला व्यक्ति ? मैं कुछ नहीं कर सकता किन्तु मात्र एक सूचना तो आप लोगों को दे सकता हूँ कि यह असार संसार है, इस में जब तक समता की दृष्टि नही आयेगी बन्धुओं, हमारे सामने चाहे महावीर भगवान भी आ जाये तो भी हम उनको पहचान नहीं पायेंगे, क्योंकि **राग की दृष्टि, व्यस की दृष्टि वीतरागता को ग्रहण नहीं करस सकती । उसकी दृष्टि में वीतरागता भी राग है और जिस व्यक्ति की दृष्टि वीतराग बन गई उस व्यक्ति की दृष्टि में राग भी वीतरागता में ढल जाता हे ।**

संसारी जीव यद्यपि पतित है, पावन नहीं है लेकिन पावन बनने की क्षमता रखता है । जिससे हमारे में इतनी सहिष्णुता आ जाये कि चोर को भी चोर न कहें, डाँटे नहीं, किन्तु डांटते हुये भी उसे साहूकर बनने का शिक्षण तो दें ही । आप डायरेक्ट डांटने न लग जायें । वह समता दृष्टि अपने अन्दर आ जाये, जिससे हमारी परिणति उज्जवल हो, हमारी परिणति इतनी सुन्दर हो कि जगत् को भी वह सुन्दर बना सके और उस सुन्दरता का दिग्दर्शन करके प्रत्येक व्यक्ति कुछ आदर्श धारण कर सके । इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसके लिये पुरुषार्थ अपेक्षित है इसके लिये त्याग अपेक्षित है, इसके लिये सहिष्णुताकी आवश्यकता है, संयम व तप की आवश्यकता है, किन्तु लक्ष्य हो वीतराग–दृष्टि । यह है अस्तेय महाव्रत जिसमें चोर को चोर भी नहीं कहा । आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि–जो **चोर को चोर कहता हैं वह और भी बड़ा चोर है । साहूकारी सिखाना ही एक मात्र अचौर्य महाव्रत है –**

१निन्दा करे स्तुति करे तलवार मारे
या आरती मणिमय सहसा उतारे
साधु तथापि मन में समभाव धारे ।
वैरी सहोदर जिन्हे एक सार सारे ॥
निजगुण कर्ता आत्मा हैं पर कर्ता पर आप, ।
इस विध जाने मुनि सभी निज–टत हो तज पाप ॥
प्रमाद जब तक तुम करो पर–कर्तापन मान, ।
तब तक विधि बन्धान हो, हो न 'समय' का ज्ञान ॥

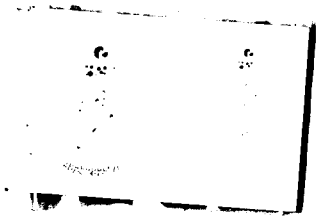

प्रकाशनों में आर्थिक-सहयोग

१. श्रीमान धनपाल जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
२. श्रीमति शांतिदेवीजी जैन धर्मपत्नी जय कुमार जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
३. श्रीमान नेमीचंद जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
४. श्रीमान बलवंतराय जी जैन, त्रिनगर, दिल्ली
५. श्रीमान विजय कुमार जी जैन एल.पी.एस. डायरेक्टर रोहतक
६. श्रीमान अरिहंत कुमार जी जैन, पानीपत
७. श्रीमान मेयरचंद अजीत प्रसादजी जैन, (रेवाडीवाले)
८. श्रीमान कस्तूरचंद भागचंदजी काशलीवाल, कलकत्ता
९. श्रीमान हुकमचंद धनकुमारजी पाटनी, कलकत्ता
१०. श्रीमान सदभूषण जी जैन, हांसी
११. श्रीमान राजकुमार जी जैन (दडे वाले), हांसी
१२. श्रीमान मेसर्स जैन पेट्रॉल सप्लायिंग कम्पनी, हांसी
१३. श्रीमान सरदारीलाल जी जैन, बम्बई
१४. श्रीमान जगदीशभाई खोखानी, घाटकोपर, बम्बई
१५. श्रीमान शांति भाई महेता, बम्बई
१६. श्रीमान विपिन भाई गोड़ा, बम्बई
१७. श्रीयुत कंचनबेन चिनुलाल दोषी, सुदासणा
१८. श्री दिगम्बर जैन महिला मंडल, हांसी
१९. श्रीमान ब्रजभूषण जी बलवंतराय जी जैन, दिल्ली
२०. डॉ. भरतभाई कांतिलाल बखारिया, यु.एस.ए.
२१. श्रीमान जयकुमार जी जैन (दडेवाले) हांसी
२२. श्रीमान चन्दप्रकाश जी जैन (सफोदो मण्डी)
२३. श्रीमान कशमीरी लाल जी जैन (सफोदो मण्डी)
२४. श्रीमान विनोदजी जैन अशोक बिहार (दिल्ली)
२५. श्रीमति कमलेश सुकौशल जी जैन (दिल्ली)
२६. श्रीमान कुलभूषण जी जैन, एडवोकेट (हांसी)
२७. एक सदग्रहस्थ की ओर से (बम्बई)
२८. श्रीमान ललित जी सुपुत्र मोहनलाल जी जैन (अहमदाबाद)

श्री दि. जैन वीर विद्या संघ ट्रस्ट, गुजरात के प्रकाशन

१.	सामान्य प्रश्नोत्तर माला हिन्दी (१३०० प्रश्नोत्तर)	नवम संस्करण	१०.००
२.	तत्त्वार्थ प्रश्नोत्तर माला हिन्दी (११०० प्रश्नोत्तर)	तृतीय संस्करण	१०.००
३.	अभिषेक पूजन पाठ संग्रह (६४ पेज पॉकेट बुक)	पंचम संस्करण	२.५०
४.	द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तर माला हिन्दी (अर्थ, भावार्थ एवं ३०० प्रश्नोत्तर)	प्रथम संस्करण	१०.००
५.	सामान्य ज्ञान प्रश्नोत्तर माला गुजराती (१३०० प्रश्नोत्तर)	द्वितीय संस्करण	१०.००
६.	तत्त्वार्थ प्रश्नोत्तर माला गुजराती (८०० प्रश्नोत्तर)	प्रथम संस्करण	५.००
७.	तत्त्वार्थ सूत्र सार्थ पाकेट बुक (गुजराती)	प्रथम संस्करण	५.००
८.	अभिषेक पूजन पाठ संग्रह गुजराती (६४ पेज पॉकेट बुक)	तृतीय संस्करण	२.५०
९.	आत्मशोधन गुजराती (प्रतिक्रमण)	द्वितीय संस्करण	८.००
१०.	गुणस्थान प्रश्नोत्तर माला (लगभग ६४० प्रश्नोत्तर)	प्रथम संस्करण	१०.००
११.	तत्त्वार्थ सूत्र सार्थ (पॉकेट बुक)	द्वितीय संस्करण	५.००
१२.	छहढाला त्रय प्रश्नोत्तर	द्वितीय संस्करण	१०.००
१३.	नमस्कार पुष्पिका	प्रथम संस्करण	३.००
१४.	बाल बोध (१,२,३,४ भाग)	द्वितीय संस्करण	५.००
१५.	प्रश्नावली (१००० प्रश्न) उत्तर सहित	पंचम संस्करण	१०.००
१६.	भाव भक्ति	द्वितीय आवृत्ति	३.००
१७.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका (गुजराती)	प्रथम आवृत्ति	१०.००
१८.	लहरों से अथाह की ओर	प्रथम आवृत्ति	३.००
१९.	पूर्णोदय शतक	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२०.	सर्वोदय शतक	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२१.	नंदीश्वर भक्ति (पद्यानुवाद)	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२२.	साधना पथ का पाथेय	प्रथम आवृत्ति	प्रकाशन सहयोग
२३.	गुरुवाणी प्रवचन (आ.श्री विद्यासागर जी)	द्वितीय संस्करण	१०.००
२४.	आराधना कथा कोष	प्रथम संस्करण	प्रकाशन सहयोग
२५.	जैन सिद्धांत प्रवेशिका (हिन्दी)	प्रथम संस्करण	१०.००

२६ प्रवचनप्रमेय
२७ प्रवचन प्रदीप
२८ प्रवचन पर्व
२९ प्रवचन पारिजात
३० विद्याधर से विद्यासागर
३१ तेरा सो एक
३२ प्रवचन पीयूष
३३ आत्मानुभूति ही समयसार है
३४ आदर्श कौन...?
३५ ब्रह्मचर्य चेतन का भोग
३६ डबडबाती आँखें
३७ भक्त का उत्सर्ग
३८ उन्नति की खुराक अचौर्यव्रत
३९ मनवचकाय की एकाग्रता सहित आत्मलीनता ही ध्यान है
४० मूर्त से अमूर्त की ओर.....
४१ जैन दर्शन का हृदय
४२ मर, हम, मरहम बने.....
४३ आनन्द का स्त्रोत आत्मानुशासन
४४ सागर में विद्यासागर
४५ सत्य की छाँव में
४६ न धर्मो धार्मिकैर्बिना
४७ प्रवचनद्वय (कर विवेक से काम, चरण आचरण की ओर)
४८ परोन्मुखता ही परिग्रह है
४८ निजात्म रमण ही अहिंसा है

प्रस्तुत २५ कृतियों का मूल्य
रु. २०१,इन कृति से प्राप्त राशि अगलें प्रकाशनों के
उपयोग में ही ली जायेगी ।

प्राप्ति स्थान :
वीर विद्या संघ, गुजरात
बी/२, संभवनाथ एपार्टमेन्ट, बखारिया कालोनी
उस्मानपुरा, अहमदाबाद - १३ (गुजरात)
फोन नं. ४०६८२३